International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

पश्चिमी उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक अस्मिता और सिनेमाई भाषा: कमाल अमरोही और विशाल भारद्वाज के सिनेमा का तुलनात्मक अध्ययन

अखिलेश वर्मा[1], डॉ० पृथ्वी सेंगर[2]

[1]शोधार्थी, (डिपार्टमेंट ऑफ़ जर्नलिज्म और मास कम्युनिकेशंस), आई० आई० एम० टी० विश्वविद्यालय, मेरठ, भारत
[2]असिस्टेंट प्रोफेसर, (डिपार्टमेंट ऑफ़ जर्नलिज्म और मास कम्युनिकेशंस), आई० आई० एम० टी० विश्वविद्यालय, मेरठ, भारत

शोध सारांश
प्रस्तुत शोध पत्र हिंदी सिनेमा के दो प्रमुख निर्देशकों कमाल अमरोही और विशाल भारद्वाज की सिनेमाई दृष्टि तथा उनके सौंदर्यबोध का एक तुलनात्मक अध्ययन है। यह शोध मुख्य रूप से पश्चिमी उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को केंद्र में रखते हुए अमरोही की पाकीज़ा और भारद्वाज की ओमकारा का विश्लेषणात्मक मूल्यांकन करता है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि एक ही भौगोलिक क्षेत्र से संबंध रखने के बावजूद इन दोनों रचनाकारों की सिनेमाई भाषा में गहरा वैचारिक और सांस्कृतिक अंतर मौजूद है। एक ओर कमाल अमरोही हैं जो लखनऊ और अमरोहा की गंगा जमुनी तहज़ीब, नज़ाकत और सूफियाना रिवायतों का प्रतिनिधित्व करते हुए अपने सिनेमा में अतीत की स्मृतियों व काव्यात्मक रूमानियत से बुना एक स्वप्निल संसार रचते हैं। वहीं दूसरी ओर विशाल भारद्वाज मेरठ और मुजफ्फरनगर पट्टी के खुरदरे यथार्थ को पर्दे पर उकेरते हैं। उनके सिनेमा में ठेठ खड़ी बोली, जातीय हिंसा, बाहुबली संस्कृति और राजनीतिक दांव पेंच किसी प्रामाणिक दस्तावेज़ की तरह नज़र आते हैं। यह अध्ययन प्रमाणित करता है कि कोई भी निर्देशक अपने क्षेत्रीय और सांस्कृतिक परिवेश से अछूता नहीं रह सकता। अमरोही जहाँ अतीत की रोमानियत के संरक्षक प्रतीत होते हैं, वहीं भारद्वाज वर्तमान के कठोर यथार्थ के मुखर प्रवक्ता हैं। इन दो विपरीत सिनेमाई आयामों का यह विश्लेषण हिंदी सिनेमा में नज़ाकत से सियासत तक हुए गहरे सांस्कृतिक संक्रमण को बहुत ही जीवंत रूप में रेखांकित करता है।

कीवर्ड्स: पश्चिमी उत्तर प्रदेश, सांस्कृतिक अस्मिता, सिनेमाई भाषा, स्त्री-विमर्श, पाकीज़ा, ओमकारा, दृश्य-विधान, बाहुबली संस्कृति, खड़ी बोली।

1. परिचय
सिनेमा केवल मनोरंजन का साधन मात्र नहीं है, बल्कि यह समाज का एक ऐसा दर्पण है जिसमें हम अपने समय, भूगोल और संस्कृति की छवि देखते हैं। प्रसिद्ध फिल्म विद्वान ड्वायर का मानना है कि "हिंदी सिनेमा भारतीय आधुनिकता और परंपरा के द्वंद्व को समझने का सबसे सशक्त माध्यम है" (ड्वायर, राचेल. 2014)। जब हम हिंदी सिनेमा के भूगोल की बात करते हैं, तो अक्सर मुंबई या पंजाब का जिक्र होता है, लेकिन पश्चिमी उत्तर प्रदेश ने हिंदी सिनेमा को एक विशिष्ट 'तेवर' और 'जुबान' दी है।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश, जिसे ऐतिहासिक रूप से 'दोआब' का क्षेत्र कहा जाता है, सांस्कृतिक रूप से अत्यंत जटिल और विरोधाभासी है। यह क्षेत्र एक तरफ उर्दू शायरी, सूफी संगीत और नफासत पसंद अभिजात वर्ग का केंद्र रहा है, तो दूसरी तरफ यह कृषि-प्रधान समाज, जातीय संघर्ष और बाहुबली राजनीति की प्रयोगशाला भी है। इस सांस्कृतिक द्वंद्व को समझने के लिए कमाल अमरोही और विशाल भारद्वाज का अध्ययन अनिवार्य है।
अमरोही का सिनेमा हमें उस दौर में ले जाता है जब पश्चिमी यूपी 'रोमानियत' और 'अदब' के लिए जाना जाता था। उनकी फिल्म '*पाकीज़ा*' एक 'सांस्कृतिक स्मृति' है। इसके ठीक विपरीत, विशाल भारद्वाज का सिनेमा हमें समकालीन पश्चिमी यूपी के रूबरू कराता है, जहाँ 'बंदूक' और 'बोली' दोनों आग उगलते हैं। उनकी फिल्म '*ओमकारा*' एक 'कठोर यथार्थ' है। यह शोध पत्र यह विश्लेषण करता है कि कैसे एक ही मिट्टी से दो अलग-अलग प्रकार के सिनेमाई सौंदर्य 'काव्यात्मक यथार्थवाद' और 'गैंगस्टर यथार्थवाद' का जन्म होता है।

2. शोध के उद्देश्य

इस अध्ययन के माध्यम से हम निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहते हैं:

1. सांस्कृतिक जड़ों की पड़ताल: यह समझना कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश की ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि ने किस प्रकार *पाकीज़ा* और *ओमकारा* की कथावस्तु को आकार दिया है।
2. सिनेमाई भाषा का तुलनात्मक विश्लेषण: संवाद, ध्वनि, और दृश्य-विधान के स्तर पर अमरोही और भारद्वाज की तकनीकों में अंतर स्पष्ट करना।
3. स्त्री-पात्रों का अध्ययन: दोनों फिल्मों में महिला पात्रों (साहिबजान और डॉली/इन्दु) की सामाजिक स्थिति, उनके संघर्ष और पितृसत्तात्मक दबावों का मूल्यांकन करना।

3. प्रविधि

शोध की प्रकृति गुणात्मक और विश्लेषणात्मक है।
3.1. शोध अभिकल्प: यह शोध 'तुलनात्मक केस स्टडी' मॉडल पर आधारित है।
3.2. प्रतिदर्श: उद्देश्यपूर्ण चयन विधि के तहत दो प्रतिनिधि फिल्मों का चयन किया गया है—*पाकीज़ा* (शास्त्रीय/सामंती पश्चिमी यूपी) और *ओमकारा* (आधुनिक/राजनीतिक पश्चिमी यूपी)। इन फ़िल्मों में पश्चिमी उत्तर प्रदेश को कथावस्तु का आधार लिया गया है।
3.3. डेटा संग्रह: प्राथमिक स्रोतों के रूप में फिल्मों का टेक्स्ट विश्लेषण किया गया है। द्वितीयक स्रोतों के रूप में राचेल ड्वायर, हसन, पूनम त्रिवेदी, पारोमिता चक्रवर्ती और मेघनाद देसाई जैसे विद्वानों के साहित्य और साक्षात्कारों का उपयोग किया गया है।

4. सिनेमाई भाषा: परिभाषा और सैद्धांतिक ढांचा

इस शोध के संदर्भ में 'सिनेमाई भाषा' से तात्पर्य उन दृश्य-श्रव्य तत्वों से है जो कहानी को अर्थ देते हैं।
संवाद और ध्वनि: इसमें पात्रों की भाषा, उच्चारण, पार्श्व संगीत और मौन शामिल हैं। भारद्वाज के अनुसार, "सिनेमा में भाषा केवल संवाद नहीं है, वह पात्र के भूगोल और उसके सामाजिक रुतबे का बायो-डेटा है" (भारद्वाज, विशाल. 2014)।
दृश्य भाषा: इसमें कैमरा एंगल, लाइटिंग, सेट डिज़ाइन, वेशभूषा और रंगों का मनोविज्ञान शामिल है। अमरोही के लिए दृश्य एक 'पेंटिंग' है, जबकि भारद्वाज के लिए दृश्य एक 'हैंड हेल्ड फुटेज' जैसा है।

5. केस स्टडी: 'पाकीज़ा' (कमाल अमरोही) – एक खोई हुई सभ्यता का शोक गीत

कमाल अमरोही, जो स्वयं अमरोहा (मुरादाबाद मंडल) के ज़मींदार परिवार से थे, ने *पाकीज़ा* को 14 वर्षों में गढ़ा (देसाई, मेघनाद. 2013)। यह फिल्म केवल एक प्रेम कहानी नहीं, बल्कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश की मिटती हुई 'कस्बाई संस्कृति' का शोकगीत है।

5.1. सिनेमाई भाषा: तहज़ीब, प्रतीक और काव्य

कमाल अमरोही की फिल्म 'पाकीज़ा' (1972) हिंदी सिनेमा के इतिहास में केवल एक फिल्म नहीं बल्कि 'मुस्लिम सोशल्स' और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की सामंती संस्कृति का एक दृश्य-काव्य मानी जाती है। प्रसिद्ध फिल्म समीक्षक मेघनाद देसाई अपनी पुस्तक 'पाकीज़ा: एन ओड टू अ बायगोन वर्ल्ड' में लिखते हैं कि अमरोही का सिनेमा यथार्थवाद के बजाय 'अति-यथार्थवाद' और शैलीकृत सौंदर्यबोध पर आधारित है। यहाँ भाषा, दृश्य और पात्र एक ऐसी दुनिया का निर्माण करते हैं जो भौगोलिक रूप से लखनऊ और अमरोहा के करीब होते हुए भी एक स्वप्निल लोक में स्थित लगती है (देसाई, मेघनाद. 2013)।

5.1.1. संवाद: उर्दू नफ़ासत और अदब का सौंदर्य

कमाल अमरोही ने 'पाकीज़ा' के संवाद स्वयं लिखे थे और वे इस बात का प्रमाण हैं कि संवाद केवल सूचना देने का माध्यम नहीं होते बल्कि वे वातावरण निर्माण का सबसे सशक्त उपकरण होते हैं (देसाई, मेघनाद. 2013)। फिल्म के संवादों में 'लफ्फाजी' नहीं है बल्कि खामोशी और ठहराव है।

1. प्रेम का इज़हार और पवित्रता की स्थापना

संवाद: "आपके पाँव देखे, बहुत हसीन हैं। इन्हें ज़मीन पर मत उतारिएगा... मैले हो जाएँगे।"

संदर्भ: यह संवाद तब आता है जब सलीम (राजकुमार) रेलगाड़ी के डिब्बे में सोती हुई साहिबजान के पैरों के पास एक खत छोड़ जाता है।

विश्लेषण: यह हिंदी सिनेमा का सबसे प्रतिष्ठित संवाद है। यहाँ 'मैले हो जाने' का अर्थ केवल धूल नहीं है। सलीम एक तवायफ के पैरों को पवित्र मानता है और उसे कोठे की 'गंदी ज़मीन' से दूर ले जाना चाहता है। यह संवाद साहिबजान के अस्तित्व को एक नर्तकी से बदलकर एक पूजनीय प्रेमिका के रूप में स्थापित करता है।

2. पहचान का द्वंद्व

संवाद: "कोठेवाली तवायफ़ तो कोठे पर ही अच्छी लगती है... शरीफ़ों के घर में नहीं।"

संदर्भ: जब साहिबजान अपनी मौसी से अपनी तकदीर पर बहस करती है।

विश्लेषण: यह संवाद उस सामाजिक दीवार को दर्शाता है जिसे अमरोही ने अपनी पूरी फिल्म में चुनौती दी है। यह पश्चिमी यूपी के उस सामंती समाज का सच है जहाँ तवायफ को 'कला' के लिए तो जगह मिलती है पर 'घर' में नहीं।

3. अस्वीकृति में भी तहज़ीब

संवाद: "जिनके मकानों में हम जैसे लोग रहते हैं, वहां खुदा की रहमत नहीं... उसका अज़ाब बरसता है।"

संदर्भ: साहिबजान सलीम के घर में पनाह लेने से डरती है।

विश्लेषण: यह संवाद आत्म - ग्लानि और हीनता बोध को दर्शाता है जो समाज ने उस स्त्री के मन में भर दिया है।

4. उम्मीद और निराशा का खेल

संवाद: "उम्मीद की कोई तो खिड़की खुलेगी... या इस घुटन में दम घुट जाएगा।"

संदर्भ: कोठे की बंद दीवारों के बीच साहिबजान का एकालाप।

विश्लेषण: यहाँ 'खिड़की' मुक्ति का प्रतीक है। अमरोही ने संवादों में रूपकों का बहुत सुंदर प्रयोग किया है।

5. पुरुषवादी समाज पर कटाक्ष

संवाद: "इन्हीं लोगों ने ले लीना दुपट्टा मेरा..."

संदर्भ: यह गीत के बोल हैं लेकिन फिल्म में संवाद की तरह कार्य करते हैं।
विश्लेषण: यहाँ 'सिपाही', 'राजा' और 'व्यापारी' सत्ता के प्रतीक हैं जो स्त्री की अस्मिता (दुपट्टा) का हरण करते हैं।
6. अतीत का साया
संवाद: "ये जो गहने हैं, ये मेरे नहीं... मेरी माँ के भी नहीं... ये उस औरत के हैं जिसे दुनिया ने जीने नहीं दिया।"
संदर्भ: नवाबजान अपनी बहन (साहिबजान की माँ) की कहानी सुनाती है।
विश्लेषण: यह संवाद 'विरासत में मिले दर्द' को रेखांकित करता है।
7. मिलन की तड़प
संवाद: "चलो दिलदार चलो... चाँद के पार चलो।"
संदर्भ: यह भी संगीतमय संवाद है।
विश्लेषण: 'चांद के पार' एक ऐसी जगह है जहाँ समाज के नियम लागू नहीं होते। अमरोही बार-बार इस परीलोक की बात करते हैं।
8. नाम और पहचान
संवाद: "मेरा नाम? मेरा कोई नाम नहीं... जो बुला ले, जिस नाम से बुला ले, मैं वही हूँ।"
संदर्भ: जब सलीम उससे उसका नाम पूछता है।
विश्लेषण: यह तवायफ के 'वस्तुकरण' को दिखाता है कि उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है, वह केवल ग्राहक की इच्छा का प्रतिबिंब है।
9. सलीम का विद्रोही तेवर
संवाद: "मैं तुम्हें उस गलीज जगह से निकालकर अपने घर की ज़ीनत बनाऊँगा।"
संदर्भ: सलीम का साहिबजान को वादा।
विश्लेषण: यह संवाद पितृसत्तात्मक संरक्षण का भी प्रतीक है और सच्चे प्रेम का भी।
10. पिता से सामना
संवाद: "आप जिसे तवायफ़ कहते हैं, वो आपकी बहू है।"
सदर्भ: सलीम अपने पिता (नवाब) से विद्रोह करता है।
विश्लेषण: यह संवाद दो पीढ़ियों के टकराव और पुरानी मान्यताओं के टूटने का क्षण है।
11. ख़ामोशी की आवाज़
संवाद: "आज रात... हवाओं में एक नशा है।"
संदर्भ: नदी में नाव के दृश्य के दौरान।
विश्लेषण: अमरोही ने प्रकृति को भी एक पात्र की तरह बुलवाया है। यहाँ संवाद कम और 'मौन' ज्यादा हैं।
12. अंतिम निर्णय
संवाद: "शराफत और तवायफ़ का कोई मेल नहीं... ये दो अलग दुनिया हैं।"
संदर्भ: क्लाइमेक्स से पहले का द्वंद्व।
विश्लेषण: फिल्म इसी संवाद को गलत साबित करने की यात्रा है।

5.1.2. दृश्य-विधान और प्रतीक:

फिल्म विद्वान रेचल ड्वायर उल्लेख करती हैं कि मुस्लिम सोशल्स में 'पर्दा' और 'निगाह' का दृश्य-विधान केंद्रीय होता है (ड्वायर, राचेल. 2014)। अमरोही और उनके सिनेमैटोग्राफर *जोसेफ विरशिंग* ने इसे बखूबी साधा है।

रेलगाड़ी की सीटी: पूरी फिल्म में कोठे की रुकी हुई ज़िंदगी के बीच बार-बार रेलगाड़ी की सीटी सुनाई देती है। यह प्रतीक बहुत गहरा है। एक तरफ पैरों में बंधे 'घुंघरू' हैं जो स्थिरता और बंधन का प्रतीक हैं तो दूसरी तरफ 'रेलगाड़ी'

है जो गति, आधुनिकता और भाग जाने की संभावना का प्रतीक है। अमरोही ने ध्वनि का प्रयोग दृश्य की तरह किया है।

पिंजरे में बंद पक्षी: साहिबजान के कमरे में अक्सर एक पिंजरा दिखाई देता है। यह साहिबजान की अपनी स्थिति का रूपक है। वह सोने के पिंजरे अर्थात् कोठे में कैद एक बुलबुल की तरह है।

फव्वारे और झूमर: अमरोही ने 'लॉन्ग शॉट्स' का उपयोग किया है ताकि दर्शक कोठे की भव्यता को देख सकें। लेकिन पानी के फव्वारे अक्सर उदासी का प्रतीक बनकर आते हैं, जो बह तो रहे हैं लेकिन कहीं पहुँच नहीं रहे।

गुलाबी धुंध और परछाइयां: फिल्म के कई दृश्यों, विशेषकर नाव वाले दृश्य और चांदनी रात के दृश्यों में एक खास तरह की धुंध का इस्तेमाल किया गया है। अमरोही द्वारा प्रकाश और परछाइयों का यह प्रयोग गुरु दत्त की सिनेमाई शैली के बहुत करीब है। जैसा कि कबीर ने अपनी पुस्तक *'गुरु दत्त: अ लाइफ इन सिनेमा'* में विश्लेषण किया है कि कैसे भारतीय सिनेमा के कुछ निर्देशकों ने पात्रों के अकेलेपन को संवादों के बजाय 'परछाइयों' के माध्यम से दिखाया है; अमरोही भी 'पाकीज़ा' में ठीक यही करते हैं (कबीर, नसरीन मुन्नी. 1996) । यह पश्चिमी यूपी की सर्दियों की रातों का यथार्थ तो है ही, साथ ही यह उस 'रहस्य' को भी गहराता है जो साहिबजान के चरित्र के इर्द-गिर्द बुना गया है।

5.1.3. पात्रों का विश्लेषण: नियति और विद्रोह

साहिबजान: साहिबजान केवल एक शरीर नहीं, बल्कि एक 'आत्मा' है जो गलत जगह फंस गई है। उसका चरित्र भारतीय स्त्री के उस पारंपरिक रूप को दर्शाता है जो त्याग और मौन में विश्वास रखती है, लेकिन उसकी आँखें निरंतर विद्रोह करती हैं। वह शरीर से भले ही कोठेवाली हो, पर रूह से एक सती-सावित्री है।

सलीम: सलीम पश्चिमी उत्तर प्रदेश के उस प्रगतिशील सामंतवाद का चेहरा है जो अपनी जड़ों से जुड़ा है लेकिन रूढ़ियों को तोड़ने का साहस रखता है। वह साहिबजान को 'सुधारना' नहीं चाहता, बल्कि उसे 'अपनाना' चाहता है। उसका प्रेम वासना से परे रूहानी है।

नवाबजान: वह पितृसत्ता की संरक्षक महिला पात्र है। वह जानती है कि विद्रोह का अंजाम क्या होता है, इसलिए वह साहिबजान को रोकती है। उसका चरित्र यथार्थ के सबसे करीब है, जो समाज के क्रूर नियमों को जानती है और उनसे समझौता कर चुकी है।

इस प्रकार, कमाल अमरोही की सिनेमाई भाषा केवल कहानी कहने का माध्यम नहीं है, बल्कि वह पश्चिमी उत्तर प्रदेश की लुप्त होती सांस्कृतिक विरासत का एक दस्तावेज है, जिसे उन्होंने शायरी और नफासत के आवरण में सुरक्षित रखा है।

5.2. स्त्री की स्थिति: 'सोने का पिंजरा' और पवित्रता का द्वंद्व

पाकीज़ा में स्त्री (साहिबजान) समाज के केंद्र में होकर भी पूरी तरह हाशिए पर है।

देह बनाम आत्मा: समाज साहिबजान के नृत्य और देह का तो प्रशंसक है, किन्तु उसकी आत्मा को अपनाने से कतराता है। उसका कोठा एक 'सोने का पिंजरा' है जहाँ दौलत तो है, पर सामाजिक स्वीकृति नहीं।

पाकीज़गी की खोज: पूरी फिल्म का केंद्रीय संघर्ष साहिबजान का अपनी 'पवित्रता' सिद्ध करना है। देसाई लिखते हैं कि "अमरोही की नायिका तवायफ होकर भी किसी सती-सावित्री से कम पवित्र नहीं है"(देसाई, मेघनाद. 2013)। उसका नंगे पाँव काँच पर नाचना केवल दृश्य नहीं, बल्कि उस पीड़ा का रूपक है जो पितृसत्तात्मक समाज उसे देता है। यहाँ शोषण शारीरिक से अधिक मानसिक है।

5.3. सांस्कृतिक पृष्ठभूमि: गंगा-जमुनी तहज़ीब और सामंतवाद

कमाल अमरोही की फिल्म 'पाकीज़ा' को केवल एक प्रेम कहानी के रूप में देखना इसके साथ अन्याय होगा। यह फिल्म वास्तव में पश्चिमी उत्तर प्रदेश की उस 'अशरफ़िया संस्कृति' का एक दृश्य-दस्तावेज़ है जो आजादी के बाद के दशकों में तेजी से लुप्त हो रही थी। भास्कर और एलेन तर्क देते हैं कि अमरोही का सिनेमा एक 'इस्लामिकेट' वातावरण

का निर्माण करता है जो ऐतिहासिक यथार्थ और सांस्कृतिक कल्पना का एक अनूठा मिश्रण है (भास्कर, इरा., एवं एलेन, रिचर्ड. 2009)। इस पृष्ठभूमि को तीन मुख्य आयामों में समझा जा सकता है।

5.3.1. तहज़ीब: धर्म से ऊपर शिष्टाचार और कला

पश्चिमी उत्तर प्रदेश विशेषकर अमरोहा और लखनऊ के कुलीन वर्ग में धर्म से अधिक महत्व 'तहज़ीब' यानी शिष्टाचार को दिया जाता था। फिल्म में कोठा केवल देह व्यापार का केंद्र नहीं बल्कि कला और अदब के संरक्षण का स्थान है। ओल्डेनबर्ग का मानना है कि ऐतिहासिक रूप से तवायफें केवल मनोरंजन करने वाली स्त्रियां नहीं थीं बल्कि वे उच्च संस्कृति और शिष्टाचार की संरक्षक भी थीं (ओल्डेनबर्ग, वीना तलवार. 1990)। फिल्म में हम देखते हैं कि साहिबजान के नृत्य और गायन में एक कठोर अनुशासन और उस्ताद शागिर्द परंपरा का पालन किया जाता है। यहाँ भाषा में उर्दू की नफासत है और बड़ों के सम्मान का एक अघोषित नियम है जो कोठे की बदनाम गलियों में भी उतना ही लागू होता है जितना नवाबों के महलों में। अमरोही यह स्थापित करते हैं कि संस्कृति का संबंध स्थान से नहीं बल्कि संस्कारों से होता है।

5.3.2. गंगा-जमुनी संस्कृति और सांप्रदायिक सौहार्द

अमरोही ने बहुत ही सूक्ष्मता से उस 'साझा संस्कृति' को बुना है जो पश्चिमी उत्तर प्रदेश की पहचान रही है। देसाई उल्लेख करते हैं कि अमरोही ने धार्मिक प्रतीकों का प्रयोग सांप्रदायिक पहचान के बजाय एक सांस्कृतिक वातावरण बनाने के लिए किया है (देसाई, मेघनाद. 2013)। फिल्म में मुहर्रम का जुलूस और मज़ार के दृश्य इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। मुहर्रम का मातम यहाँ साहिबजान की व्यक्तिगत पीड़ा और अकेलेपन का रूपक बन जाता है। इसी प्रकार मज़ार वह स्थान है जहाँ साहिबजान को मानसिक शांति मिलती है। यह दृश्य उस सूफियाना इस्लाम की परंपरा को दर्शाता है जो कट्टरता से दूर है और जहाँ मज़ार हिंदू और मुस्लिम दोनों के लिए श्रद्धा का केंद्र होते हैं। फिल्म यह संदेश देती है कि उस दौर का सांस्कृतिक ताना-बाना धार्मिक कठोरता के बजाय आपसी भाईचारे और साझा दुख-सुख पर आधारित था।

5.3.3. सामंती पतन: शान और खोखलापन

फिल्म का एक महत्वपूर्ण पक्ष सामंतवाद के नैतिक पतन का चित्रण है। ड्वायर हिंदी सिनेमा में 'मुस्लिम सोशल्स' का विश्लेषण करते हुए लिखती हैं कि ये फिल्में अक्सर पुरानी रईसी और आधुनिकता के बीच के द्वंद्व को दिखाती हैं (ड्वायर, राचेल. 2006)। 'पाकीज़ा' में सलीम के पिता और अन्य नवाब उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अपनी घटती हुई सत्ता और झूठी शान को बचाने के लिए संघर्षरत है। उनके लिए व्यक्ति के गुणों से ज्यादा उसका 'वंश' और 'खून' महत्वपूर्ण है। अमरोही ने नवाबों की हवेलियों को भव्य लेकिन भीतर से अंधेरा और उदास दिखाया है जो उनकी खोखली होती सामाजिक स्थिति का प्रतीक है। यह एक विरोधाभास है कि जिस कोठे को वे दिन के उजाले में हिकारत की नज़र से देखते हैं, रात के अंधेरे में उसी कोठे पर अपनी सांस्कृतिक भूख मिटाने जाते हैं। यह दोहरापन उस पितृसत्तात्मक समाज की सबसे बड़ी विडंबना थी जिसे अमरोही ने बिना किसी लाग लपेट के पर्दे पर उतारा है।

5.4. मूल्यों का स्वरूप: 'त्याग' और 'मौन'

पाकीज़ा उस दौर का प्रतिनिधित्व करती है जहाँ पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सामाजिक मूल्यों में 'व्यक्तिगत इच्छा' से ऊपर 'सामूहिक प्रतिष्ठा' को रखा जाता था।

- **त्याग का सौंदर्यशास्त्र**: फिल्म में प्रेम का अर्थ 'पाना' नहीं, बल्कि 'खोना' है। साहिबजान और सलीम, दोनों ही अपनी मोहब्बत को सामाजिक मर्यादाओं की वेदी पर 'कुर्बान' करने को तैयार रहते हैं। यहाँ विद्रोह शोर मचाकर नहीं, बल्कि 'मौन' रहकर किया जाता है। अमरोही दिखाते हैं कि उस संस्कृति में सबसे बड़ा मूल्य '**सब्र**' और '**लिहाज़**' था।

- **नैतिकता का बोझ**: मेघनाद देसाई अपने विश्लेषण में लिखते हैं कि "*अमरोही के पात्र एक ऐसे नैतिक कोड से बंधे हैं जहाँ ज़ुबान से निकली बात और खानदान की इज्जत, जान से ज्यादा कीमती है*" (देसाई, मेघनाद. 2013)। साहिबजान का कोठे पर वापस लौटना उसकी हार नहीं, बल्कि उसके 'त्याग' का चरम बिंदु है, जिसे वह सलीम की इज्जत बचाने के लिए करती है। यहाँ हिंसा 'तलवार' की नहीं, बल्कि 'खामोशी' की है।

6. केस स्टडी: 'ओमकारा' (विशाल भारद्वाज) – बीहड़ का रक्तरंजित यथार्थ

विशाल भारद्वाज का सिनेमा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बिजनौर और मेरठ के उस वर्तमान से जुड़ा है, जहाँ शेक्सपियर का 'ओथेलो' एक 'बाहुबली' बन जाता है। (भारद्वाज, विशाल. 2014)

6.1. सिनेमाई भाषा: हिंसा, अभद्र भाषा और खुरदरापन

जहाँ कमाल अमरोही का सिनेमा नज़ाकत और ठहराव का प्रतीक है वहीं विशाल भारद्वाज की फिल्म 'ओमकारा' उसी पश्चिमी उत्तर प्रदेश के हिंसक और अशांत यथार्थ को सामने लाती है। फिल्म विद्वान पूनम त्रिवेदी लिखतीं हैं कि भारद्वाज ने शेक्सपियर के 'ओथेलो' को केवल भारत में अनुकूलित नहीं किया बल्कि उसे पश्चिमी यूपी के बीहड़ों की मिट्टी और खून में पूरी तरह से सान दिया है (त्रिवेदी, पूनम. 2010)। यहाँ सिनेमाई भाषा में काव्यात्मकता की जगह एक तरह का खुरदरापन है जो इस क्षेत्र की भौगोलिक और राजनीतिक सच्चाई है। इस खंड को हम तीन प्रमुख आयामों में विश्लेषित कर सकते हैं।

6.1.1. संवाद और बोली: बारूद और देशज यथार्थ

विशाल भारद्वाज ने संवादों में पश्चिमी यूपी की ठेठ 'खड़ी बोली' का प्रयोग किया है। यहाँ गालियाँ केवल अपमान के लिए नहीं दी जातीं बल्कि वे पौरुष, आत्मीयता और क्रोध को व्यक्त करने का एक सहज माध्यम हैं। हिंदी सिनेमा में यह 'नई लहर' थी जहाँ कृत्रिम फिल्मी भाषा को त्यागकर 'हाइपर-रियलिज्म' को अपनाया गया (गँटी, तेजस्विनी. 2012)।

1. मूर्खता की दार्शनिक परिभाषा

संवाद: "बेवकूफ और ** में धागे भर का फर्क होता है भैया... धागे के इंगे बेवकूफ और धागे के उंगे **... और जो धागा खींच लो तो कौन है बेवकूफ और कौन है... करोड़ का सवाल है भैया।"

संदर्भ: लंगड़ा त्यागी (ईगो) का केसू (कैसियो) को जीवन का ज्ञान देते हुए।

विश्लेषण: यह संवाद फिल्म का दर्शन है। यह पश्चिमी यूपी का देसी और व्यावहारिक ज्ञान है जो किताबी नहीं है। लंगड़ा यहाँ मानवीय स्वभाव की अस्थिरता को बता रहा है।

2. जाति और हीनता बोध

संवाद: "वो तो अपनी बिरादरी का भी नहीं है... आधा ब्राह्मण, आधा कंजर।"

संदर्भ: ओमकारा की उत्पत्ति पर टिप्पणी।

विश्लेषण: शेक्सपियर के नाटक में ओथेलो का 'काला रंग' मुद्दा था, भारद्वाज ने उसे भारतीय संदर्भ में 'जाति' में बदल दिया। ओमकारा का पूरा असुरक्षा बोध इसी संवाद में छिपा है।

3. वफादारी की कसमें

संवाद: "कसम है मुझे अपने बाप की... जो मैंने कभी झूठ बोला हो।"

संदर्भ: लंगड़ा त्यागी झूठ बोलते समय सबसे ज्यादा कसमें खाता है।

विश्लेषण: यहाँ संवादों में विडंबना है। बात-बात पर 'मां-बाप की कसम' खाना एक सामान्य व्यवहार है जिसे भारद्वाज ने चरित्र की धूर्तता दिखाने के लिए इस्तेमाल किया है।

4. स्त्री की स्थिति
संवाद: "त्रिया चरित्र... औरत की अक्ल उसकी चोटी में होती है।"
संदर्भ: पुरुष पात्रों की आपसी बातचीत।
विश्लेषण: यह संवाद उस स्त्री-द्वेषी समाज का दर्पण है जहाँ डॉली जैसी निर्दोष स्त्री पर शक करना पुरुष का 'धर्म' मान लिया जाता है।
5. सत्ता का नशा
संवाद: "बाहुबली तो हम अपने लठ पे बने हैं भाईसाहब... अब तो बस राजनीति करनी है।"
संदर्भ: ओमकारा का भाईसाहब से संवाद।
विश्लेषण: यह संवाद बाहुबली संस्कृति से राजनीतिक अपराधीकरण की ओर बढ़ते कदम को दिखाता है।
6. प्यार और अधिकार
संवाद: "चाँद जब आधा रह जावे है ना... तो भी चाँद ही कहलावे है।"
संदर्भ: डॉली का ओमकारा को प्रेम का आश्वासन।
विश्लेषण: जहाँ पुरुष हिंसा की भाषा बोलते हैं, डॉली की भाषा में अभी भी मासूमियत है। यह संवाद ओमकारा के अधूरेपन (जातिगत हीनता) को भरने का प्रयास है।
7. आँखों का धोखा
संवाद: "तू तो अपनी आँखों पे यकीन कर ले ओमकारा... कान तो कच्चे हैं तेरे।"
संदर्भ: इंदु अपने भाई (ओमकारा) को चेतावनी देती है।
विश्लेषण: यह संवाद पूरी फिल्म की त्रासदी का सार है कि देखी हुई चीज़ गलत हो सकती है और सुनी हुई बात जानलेवा।
8. आत्महत्या और हत्या का द्वंद्व
संवाद: "गोली मारेगा? मार... वैसे भी जिए जा रहा हूँ, जिए जा रहा हूँ।"
संदर्भ: केसू अपनी लाचारी व्यक्त करते हुए।
विश्लेषण: यह संवाद उस अस्तित्ववादी संकट को दिखाता है जहाँ जीवन और मृत्यु का अंतर मिट गया है।
9. विदेशी बनाम देसी
संवाद: "ये ** विलायत से नहीं आते... यहीं इसी मुल्क की मिट्टी से उगते हैं।"
संदर्भ: लंगड़ा त्यागी का अपने बारे में कथन।
विश्लेषण: यह संवाद आधुनिक और देसीपन के टकराव को दिखाता है। लंगड़ा त्यागी उस 'धरती पुत्र' का प्रतिनिधित्व करता है जिसे अंग्रेजी बोलने वाले केसू से नफरत है।
10. भाग्य का खेल
संवाद: "बड़ी हँसी आ रही है तुझे... किस्मत तो ** है, न जाने कब किसकी सेज पर जा लेटे।"
संदर्भ: लंगड़ा त्यागी अपनी नियति पर झुंझलाते हुए।
विश्लेषण: यहाँ 'अपशब्द' का प्रयोग स्त्री-अपमान से ज्यादा 'भाग्य की अनिश्चितता' को दिखाने के लिए किया गया है, जो इस क्षेत्र की पुरुषवादी शब्दावली का हिस्सा है।
11. अंतिम सत्य
संवाद: "जंगल में जब आग लगती है ना... तो जो पेड़ सबसे ऊंचा होता है, सबसे पहले उसी की जलने की बू आती है।"
संदर्भ: ओमकारा के पतन की भविष्यवाणी।
विश्लेषण: यह रूपक बताता है कि सत्ता के शीर्ष पर बैठे व्यक्ति का पतन सबसे भयानक होता है।

6.1.2. दृश्य-विधान: धूल, पसीना और अंधकार

फिल्म की सिनेमेटोग्राफी *तस्सदुक हुसैन मुफ़्ती* ने की है। फिल्म का *कलर ग्रेड* और सेट डिज़ाइन इतना गहरा है कि दर्शक स्क्रीन पर धूल और पसीने को महसूस कर सकते हैं।

हैंडहेल्ड कैमरा और अस्थिरता: भारद्वाज और उनके सिनेमेटोग्राफर ने कई दृश्यों में, विशेषकर हिंसा और पीछा करने वाले दृश्यों में 'हैंडहेल्ड कैमरे' का प्रयोग किया है। कैमरा हिलता रहता है जो दर्शकों के भीतर एक मनोवैज्ञानिक बेचैनी और अस्थिरता पैदा करता है। यह 'पाकीज़ा' के स्थिर और शांत कैमरा वर्क के ठीक विपरीत है।

रंग संयोजन: फिल्म में गहरे भूरे (*सेपिया*), मटमैले और सिनेमैटिक लाइटिंग (*लो की लाइटिंग*) वाले दृश्यों की भरमार है। गन्ने के खेत, धूल भरी सड़कें और पुरानी हवेलियां पश्चिमी यूपी के 'सख़्त' वातावरण को जीवंत करती हैं।

बीड़ी जलाइले: यह गाना केवल आइटम नंबर नहीं है बल्कि यह उस पुरुषवादी उल्लास का उत्सव है जहाँ हिंसा और जश्न साथ-साथ चलते हैं। दृश्य में आग की रोशनी, पसीने से लथपथ चेहरे और बंदूकों का प्रदर्शन—यह सब मिलकर एक अराजक सौंदर्य रचते हैं।

क्लाइमेक्स का झूला: अंतिम दृश्य में जब ओमकारा डॉली को मारता है, वहां एक झूला दिखाई देता है। यह झूला ओमकारा के डोलते हुए विश्वास का प्रतीक है। दृश्य में प्रकाश और परछाई का खेल ऐसा है कि पात्रों के चेहरे आधे अंधेरे में हैं, जो उनकी नैतिक अस्पष्टता को दिखाता है।

6.1.3. पात्रों का विश्लेषण: ईर्ष्या और असुरक्षा के पुतले

बर्नेट शेक्सपियर के सिनेमाई रूपांतरणों पर चर्चा करते हुए लिखते हैं कि भारद्वाज के पात्र मूल नाटक से भी अधिक जटिल हैं क्योंकि वे भारतीय राजनीति और जाति व्यवस्था के बोझ तले दबे हैं (बर्नेट, मार्क. 2013)।

ओमकारा: वह एक बाहुबली है लेकिन भीतर से बेहद असुरक्षित है। उसका 'आधा-ब्राह्मण और आधा-कंजर' होना उसके व्यक्तित्व की धुरी है। वह समाज पर राज तो करता है लेकिन उसे लगता है कि डॉली जैसा 'शुद्ध फूल' उसके नसीब में नहीं है। यही हीनता बोध उसके पतन का कारण बनता है।

लंगड़ा त्यागी: हिंदी सिनेमा के सबसे बेहतरीन खलनायकों में से एक। वह ईर्ष्या का मूर्त रूप है। उसकी ईर्ष्या केवल पद के लिए नहीं है, बल्कि उस 'अंग्रेजी दुनिया' अर्थात् केसू से भी है जिसका वह हिस्सा नहीं बन सकता। वह पश्चिमी यूपी की उस कुटिल बुद्धि का प्रतीक है जो सामने मीठा बोलती है और पीठ पीछे वार करती है।

डॉली: वह इस हिंसक दुनिया में 'सफेद लिली' की तरह है। उसका प्रेम निश्छल है, लेकिन पुरुषवादी समाज में उसकी मासूमियत को 'छल' मान लिया जाता है। उसका पात्र 'पाकीज़ा' की साहिबजान की तरह पीड़ित है, लेकिन यहाँ उसे बचाने वाला कोई सलीम नहीं है, बल्कि उसका रक्षक ओमकारा ही उसका भक्षक बन जाता है।

इंदु: वह पश्चिमी यूपी की असली औरत है—मजबूत, मुंहफट और निडर। वह अपने पति (लंगड़ा त्यागी) के पापों को धोती नहीं, बल्कि अंत में उसे सजा देती है। वह फिल्म की 'नैतिक धुरी' है।

केसू: वह आधुनिक, शिक्षित और गिटार बजाने वाला प्रेमी है। वह उस 'सॉफ्ट पावर' का प्रतीक है जिसे ओमकारा और लंगड़ा जैसे देसी बाहुबली हिकारत से देखते हैं।

भाईसाहब: वह राजनीति का वह चेहरा है जो अपने हाथ कभी गंदे नहीं करता। वह ओमकारा जैसे बाहुबलियों का इस्तेमाल करता है। वह दिखाता है कि असली शक्ति बंदूक में नहीं, बल्कि 'सिस्टम' में है।

निष्कर्षतः, 'ओमकारा' की सिनेमाई भाषा पश्चिमी उत्तर प्रदेश को 'रोमांटिसाइज' नहीं करती बल्कि उसे उसके नग्न और क्रूर रूप में प्रस्तुत करती है।

6.2. स्त्री की स्थिति: **पितृसत्ता, शंका और प्रतिशोध**

ओमकारा में स्त्रियाँ एक हिंसक और संदेही समाज में फंसी हैं।

पितृसत्तात्मकता: यहाँ डॉली पुरुषों की लड़ाई में केवल 'इज्जत' का प्रतीक है। लंगड़ा त्यागी द्वारा डॉली के चरित्र पर

उठाया गया एक छोटा सा सवाल ओमकारा जैसे शक्तिशाली बाहुबली को भी अंदर से तोड़ देता है (त्रिवेदी, पूनम. 2010)। यह सिद्ध करता है कि पश्चिमी यूपी में *'चरित्र की सुचिता'* का बोझ केवल स्त्री पर है।

प्रतिरोध का रूप: इसके विपरीत 'इन्दु' का पात्र है। वह इस पितृसत्ता को चुनौती देती है। अंत में उसका अपने ही पति (लंगड़ा त्यागी) का गला रेंत देना यह बताता है कि इस क्षेत्र की औरतें अब केवल मूक दर्शक नहीं हैं। जब उनके 'कुनबे' के साथ धोखा होता है, तो वे हिंसा का जवाब हिंसा से दे सकती हैं (त्रिवेदी, पूनम., एवं चक्रवर्ती, पारोमिता. 2020)।

6.3. सांस्कृतिक पृष्ठभूमि: बाहुबली और जातीय गौरव

विशाल भारद्वाज की 'ओमकारा' केवल शेक्सपियर के नाटक का रूपांतरण नहीं है बल्कि यह समकालीन पश्चिमी उत्तर प्रदेश, विशेषकर मेरठ और मुजफ्फरनगर बेल्ट की 'जाति-प्रधान राजनीति' का एक समाजशास्त्रीय दस्तावेज है। राजनीति वैज्ञानिक मिलन वैष्णव अपनी चर्चित पुस्तक 'व्हेन क्राइम पेज़' में तर्क देते हैं कि उत्तर भारत की राजनीति में बाहुबलियों का उदय केवल कानून व्यवस्था की विफलता नहीं है बल्कि यह एक सामाजिक मांग का परिणाम है (वैष्णव, मिलन. 2017) । इस फिल्म की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को तीन मुख्य बिंदुओं में समझा जा सकता है।

6.3.1. जातीय अस्मिता: अहंकार और वफादारी का द्वंद्व

पश्चिमी उत्तर प्रदेश की सामाजिक संरचना में व्यक्ति की पहचान उसकी योग्यता से ज्यादा उसकी 'जाति' और 'गोत्र' से तय होती है। फिल्म में यह जातीय गौरव हिंसा का मूल कारण है।

त्यागी बनाम अन्य: लंगड़ा त्यागी का पात्र इस जातीय दंभ का सबसे बड़ा उदाहरण है। उसका आक्रोश केवल इस बात पर नहीं है कि उसे बाहुबली का उत्तराधिकारी नहीं बनाया गया बल्कि उसे इस बात की ज्यादा ठेस है कि एक 'बाहरी' और 'अंग्रेजी बोलने वाले' केसू को उस पर तरजीह दी गई। त्यागी ब्राह्मण होने के नाते वह खुद को जातीय सोपानक्रम में ऊपर मानता है।

ओमकारा की हीनता: ओमकारा भले ही बाहुबली है लेकिन वह 'आधा-ब्राह्मण और आधा-कंजर' है। जाफ्रेलॉट भारत की मूक क्रांति पर अपने शोध में लिखते हैं कि उत्तर भारत में निम्न जातियों का राजनीतिक उत्थान तो हुआ है लेकिन सामाजिक स्वीकृति अभी भी पूर्ण नहीं है (जाफ्रेलॉट, क्रिस्टोफ़. 2003)। ओमकारा का पूरा चरित्र इसी 'अस्वीकृति के डर' पर खड़ा है। वह जानता है कि उसकी ताकत ही उसकी इकलौती ढाल है, जिस दिन ताकत जाएगी, समाज उसे उसकी 'औकात' याद दिला देगा।

6.3.2. शक्ति ही सर्वोपरि

फ़िल्म 'ओमकारा' के विश्लेषण को देखा जाय तो इस क्षेत्र की संस्कृति में 'शक्ति' ही एकमात्र धर्म है। यहाँ कानून का शासन नहीं बल्कि 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिद्धांत चलता है।

तमंचा संस्कृति: फिल्म में हथियार केवल लड़ने के लिए नहीं हैं, वे पुरुषों के 'गहने' हैं। शादी-ब्याह में हर्ष फायरिंग करना यहाँ खुशी का इज़हार नहीं बल्कि वर्चस्व का प्रदर्शन है। भारद्वाज दिखाते हैं कि कैसे हिंसा यहाँ के दैनिक जीवन का सामान्य हिस्सा बन चुकी है।

राज्य की अनुपस्थिति: फिल्म के दृश्यों में पुलिस या प्रशासन नदारद है या फिर बाहुबलियों की जेब में है। भारद्वाज ने 'बीहड़' को एक ऐसे स्थान के रूप में दिखाया है जहाँ राज्य के नियम लागू नहीं होते। यहाँ न्याय अदालतों में नहीं बल्कि बाहुबली के आंगन में होता है। ओमकारा स्वयं में एक समानांतर सरकार है।

6.3.3. राजनीति: पारिवारिक वर्चस्व और बाहुबल की संस्कृति

'ओमकारा' में राजनीति को किसी संवैधानिक प्रक्रिया के बजाय पश्चिमी उत्तर प्रदेश की एक विशिष्ट जीवन शैली और संस्कृति के रूप में चित्रित किया गया है। यहाँ राजनीति का अर्थ केवल चुनाव जीतना नहीं बल्कि अपने 'कुनबे' और

'बिरादरी' के वर्चस्व को कायम रखना है। फिल्म यह स्थापित करती है कि इस अंचल में बाहुबल और सत्ता का प्रदर्शन एक सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया है। भाईसाहब और ओमकारा के संबंधों के माध्यम से विशाल भारद्वाज ने उस आधुनिक सामंतवाद को उजागर किया है जहाँ आज भी 'वफादारी' और 'ताकत' ही सबसे बड़े सांस्कृतिक मूल्य माने जाते हैं।

इस परिवेश में राजनीति विचारधाराओं के टकराव का नाम नहीं है बल्कि यह मूंछ की लड़ाई और आन बान शान का प्रश्न है। समाज में बाहुबली को केवल एक अपराधी के तौर पर नहीं देखा जाता बल्कि उसे अपनी जाति और समुदाय के 'रक्षक' के तौर पर सांस्कृतिक स्वीकृति प्राप्त है। फिल्म दिखाती है कि यहाँ दबंगई भय का नहीं बल्कि सम्मान का पर्याय बन चुकी है। शक्ति का प्रदर्शन करना, काफिलों में चलना और बंदूकें लहराना यहाँ की मर्दानी संस्कृति का अभिन्न अंग है जहाँ हथियार हिंसा के उपकरण कम और पुरुषों के आभूषण ज्यादा लगते हैं। भारद्वाज ने बहुत बारीकी से दिखाया है कि कैसे इस क्षेत्र में अपराध और राजनीति आपस में घुलमिल कर एक नई सामाजिक संस्कृति का निर्माण करते हैं जहाँ संबंध भावनाओं से नहीं बल्कि शक्ति के समीकरणों से तय होते हैं।

6.4. मूल्यों का स्वरूप: 'सत्ता' और 'प्रतिशोध'

ओमकारा में आते-आते पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मूल्यों में एक हिंसक बदलाव दिखाई देता है। यहाँ 'त्याग' को कमजोरी और 'प्रतिशोध' को धर्म माना जाता है।

- **नैतिकता का पतन**: यहाँ नैतिक मूल्य स्थिर नहीं हैं, बल्कि वे 'राजनीतिक आवश्यकता' के अनुसार बदलते हैं। लंगड़ा त्यागी के लिए 'वफादारी' तब तक ही मायने रखती है जब तक उसे उसका फल (बाहुबली का पद) मिलता रहे। जब यह समीकरण टूटता है, तो 'भाईचारा', 'दुश्मनी' में बदल जाता है। पूनम त्रिवेदी लिखती हैं कि "*भारद्वाज की दुनिया में शेक्सपियर का त्रासदीबोध पश्चिमी यूपी की उस अराजकता से मिल जाता है जहाँ 'सत्ता' ही एकमात्र सत्य है*" (त्रिवेदी, पूनम., एवं चक्रवर्ती, पारोमिता. 2020)।
- **बदले की संस्कृति**: *ओमकारा* में पात्र अपनी पीड़ा का हिसाब 'खून' से मांगते हैं। इन्दु का अपने पति को मारना और ओमकारा का आत्महत्या करना यह सिद्ध करता है कि इस नए मूल्य-तंत्र में क्षमा के लिए कोई जगह नहीं है; यहाँ न्याय केवल 'बंदूक की नली' से निकलता है (भारद्वाज, विशाल. 2014)।

7. निष्कर्ष

इस विस्तृत शोध अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सिनेमा में 'स्थान' केवल एक भौगोलिक पृष्ठभूमि नहीं होता, बल्कि वह एक 'पात्र' की भूमिका निभाता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के संदर्भ में कमाल अमरोही की 'पाकीज़ा' और विशाल भारद्वाज की 'ओमकारा' का तुलनात्मक विश्लेषण हमें एक ही क्षेत्र के दो बिल्कुल विपरीत, किन्तु सत्य आयामों से परिचित कराता है।

सूची 7.1

आयाम	**पाकीज़ा (कमाल अमरोही)**	**ओमकारा (विशाल भारद्वाज)**
नैतिक मूल्य	नज़ाकत, अदब, त्याग, रूहानियत	शक्ति, प्रतिशोध, धोखा, यथार्थवाद
भाषा	अलंकृत उर्दू, शायरी, ठहराव	ठेठ खड़ी बोली, गालियाँ, आक्रामकता
स्त्री	पीड़ित, मूक, 'देवी' तुल्य	पीड़ित किन्तु विद्रोही, यौनिकता के साथ

आयाम	पाकीज़ा (कमाल अमरोही)	ओमकारा (विशाल भारद्वाज)
माहौल	स्वप्निल, धुंध, परछाइयाँ	धूल भरा, पसीना, अंधकार
प्रतिनिधित्व	पश्चिमी यूपी का 'अतीत'	पश्चिमी यूपी का 'आपराधिक और जातीय संघर्ष'

कहा जा सकता है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश केवल एक भौगोलिक इकाई नहीं है बल्कि यह परस्पर विरोधी सांस्कृतिक धाराओं का एक संगम है जहाँ कमाल अमरोही और विशाल भारद्वाज जैसे निर्देशकों ने एक ही मिट्टी को दो अलग अलग कालखंडों और दृष्टिकोणों से देखा है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक अस्मिता और सिनेमाई भाषा शीर्षक के अंतर्गत किया गया यह तुलनात्मक अध्ययन स्पष्ट करता है कि जहाँ अमरोही का सिनेमा एक लुप्त होती सभ्यता का शोकगीत है वहीं भारद्वाज का सिनेमा उभरती हुई अराजकता का दस्तावेज है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश की पहचान गहरे विरोधाभासों में निहित है क्योंकि अमरोही ने अमरोहा और लखनऊ की उस कुलीन संस्कृति को चुना जहाँ जीवन का चरम मूल्य शिष्टाचार और अदब था और जहाँ संघर्ष दिल के भीतर होता है। यह पश्चिमी उत्तर प्रदेश का वह चेहरा है जो गंगा जमुनी तहज़ीब का प्रतिनिधित्व करता है। इसके ठीक विपरीत भारद्वाज ने मेरठ और मुजफ्फरनगर के उस खुरदरे यथार्थ को चुना जहाँ जीवन का उद्देश्य सत्ता और वर्चस्व है तथा जहाँ संघर्ष बंदूक से होता है। यह बाहुबली संस्कृति का चेहरा है जहाँ कोमलता की जगह राजनीति ने ले ली है।

सिनेमाई भाषा के स्तर पर यह शोध अभिव्यक्ति के माध्यम में आए आमूलचूल परिवर्तन को रेखांकित करता है क्योंकि यह यात्रा उर्दू की नफासत से शुरू होकर खड़ी बोली के लठमार अंदाज तक जाती है। अमरोही के लिए भाषा एक काव्य है जहाँ पैरों को ज़मीन पर न उतारने जैसे संवाद बोले जाते हैं जबकि भारद्वाज के लिए भाषा एक हथियार है जहाँ अपशब्दों का बेबाक प्रयोग होता है। अमरोही मौन और ठहराव से बात कहते हैं जबकि भारद्वाज शोर और बेचैनी से अपनी बात रखते हैं। पाकीज़ा का कैमरा स्थिर है जो एक चित्रकला की तरह सौंदर्य को निहारता है जबकि ओमकारा का कैमरा अस्थिर है जो समाज की मानसिक उथल पुथल और हिंसा को दर्ज करता है। इसी प्रकार दोनों निर्देशकों के सिनेमा में पितृसत्ता एक समान शत्रु है किन्तु स्त्री का प्रतिरोध बदल गया है। पाकीज़ा की साहिबजान का विद्रोह कलात्मक और आत्मपीड़क है क्योंकि वह सोने के पिंजरे यानी कोठे में कैद है और उसका हथियार नृत्य है जो त्याग और समर्पण में दिखता है। दूसरी ओर ओमकारा की इन्दु और डॉली का विद्रोह हिंसक और निर्णायक है क्योंकि वह राजनीति के अखाड़े में सरेआम हिंसा का शिकार होती है लेकिन अंततः वह मौन नहीं रहती। इन्दु द्वारा अपने पति का गला रेंत देना यह घोषणा है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश की स्त्री अब केवल प्रतिष्ठा की गुड़िया नहीं बल्कि दुर्गा का रूप है।

अंततः यह शोध पत्र अपने शीर्षक पश्चिमी उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक अस्मिता और सिनेमाई भाषा को पूर्णतः न्यायोचित ठहराता है क्योंकि इस अध्ययन ने यह स्थापित किया है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक अस्मिता स्थिर नहीं है बल्कि वह पुराने सामंती मूल्यों से आधुनिक राजनीतिक यथार्थ की ओर प्रवाहित हुई है। कमाल अमरोही और विशाल भारद्वाज इस प्रवाह के दो किनारे हैं जिसमें अमरोही ने उस अस्मिता के रूहानी पक्ष या आत्मा को सिनेमाई भाषा दी जबकि भारद्वाज ने उसके दैहिक और हिंसक पक्ष या शरीर को स्वर दिया। निष्कर्षतः यदि अमरोही का सिनेमा पश्चिमी उत्तर प्रदेश की स्मृति है तो विशाल भारद्वाज का सिनेमा उसका दर्पण है और दोनों मिलकर ही इस क्षेत्र की तस्वीर बनाते हैं।

8. संदर्भ

1. ड्वायर, राचेल. (2014). *बॉलीवुड्स इंडिया: हिंदी सिनेमा ऐज़ अ गाइड टू कंटेम्परेरी इंडिया.* लंदन: रीएक्शन बुक्स।
2. भारद्वाज, विशाल. (2014). *अनुपमा चोपड़ा के साथ साक्षात्कार.* मुंबई: फ़िल्म कम्पैनियन।
3. देसाई, मेघनाद. (2013). *पाकीज़ा: एन ओड टू अ बायगोन एरा.* दिल्ली: हार्पर कॉलिन्स इंडिया।
4. कबीर, नसरीन मुन्नी. (2004). *गुरु दत्त: अ लाइफ इन सिनेमा.* नोएडा: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस इंडिया।
5. भास्कर, इरा., एवं एलेन, रिचर्ड. (2009). *बॉम्बे सिनेमा की इस्लामी संस्कृति.* नई दिल्ली: तुलिका बुक्स।
6. ओल्डेनबर्ग, वीना तलवार. (1990). "लाइफस्टाइल एज़ रेजिस्टेंस: द केस ऑफ द कोर्टेसन्स ऑफ लखनऊ." *फेमिनिस्ट स्टडीज़*।
7. ड्वायर, राचेल. (2006). *फिल्मिंग द गॉड्स: रिलिजन एंड इंडियन सिनेमा.* रूटलेज।
8. भारद्वाज, विशाल. (2014). *मक़बूल/हैदर/ओमकारा: द ओरिजिनल स्क्रीनप्ले.* नई दिल्ली: हार्पर कॉलिन्स।
9. त्रिवेदी, पूनम. (2010). *री-प्लेइंग शेक्सपियर इन एशिया.* यूनाइटेड किंगडम: रूटलेज।
10. गँटी, तेजस्विनी. (2012). *प्रोड्यूसिंग बॉलीवुड: इनसाइड द कंटेंपरेरी हिंदी फिल्म इंडस्ट्री.* यू.एस.ए.: ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. बर्नेट, मार्क. (2013). *शेक्सपियर एंड वर्ल्ड सिनेमा.* इंडिया: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
12. त्रिवेदी, पूनम., एवं चक्रवर्ती, पारोमिता. (2020). *शेक्सपियर ऐंड इंडियन सिनेमाज़: लोकल हैबिटेशन्स (रूटलेज स्टडीज़ इन शेक्सपियर).* लंदन: रूटलेज।
13. वैष्णव, मिलन. (2017). *व्हेन क्राइम पेज़: मनी एंड मसल इन इंडियन पॉलिटिक्स.* दिल्ली: हार्पर कॉलिन्स इंडिया।
14. जाफ्रेलॉट, क्रिस्टोफ़. (2003). *इंडियाज़ साइलेंट रिवॉल्यूशन: द राइज़ ऑफ द लोअर कास्ट्स इन नॉर्थ इंडिया.* यूनाइटेड किंगडम: हर्स्ट।
15. कबीर, नसरीन मुन्नी. (1996). *गुरु दत्त: अ लाइफ इन सिनेमा.* नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।